विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२६ • वैशाख पूर्णिमा [शक] • दि. ८-५-१९८२ • अंक ११

प्रवचन-प्रवाह

पांचवा दिन

आज साधनाके पांच दिन पूरे हुए। हम अन्तर्मुखी होकर अपने ही शरीर-स्कंध को देख रहे हैं, चित्त-स्कंधको देख रहे हैं। यह जो सिरसे पांव तक चक्कर लगा रहे हैं, कोई रूढ़ि नहीं पूरी कर रहे हैं। अपने आपको देखनेका अभ्यास कर रहे हैं। अपने मन और शरीरके स्वभावको देख रहे हैं। देख रहे हैं कि मन कितना राग-रंजित है, कितना द्वेष-दूषित है और शरीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है?

यह जो मनुष्य-जीवनको दुःखी बनानेवाला रोग है उसे समझें, उसके कारणको समझें। जीवनमें दुःख तो है ही। किसीको इस बातका दुख है तो किसी को उस बातका। जीवन-जगतकी यह पहली सच्चाई है। बिना कारणके कुछ होता नहीं। दुःखके पीछे कोई कारण है यह दूसरी सच्चाई है। यदि कारण दूर कर लिया तो दुःख दूर हो ही गया। यों दुःख दूर करनेका एक तरीका है, यह तीसरी और चौथी सच्चाइयाँ हैं। जीवन-जगतकी ये चार सच्चाइयाँ हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सच्चाइयाँ है।

चित्तकी चेतनाके बारेमें हमने चर्चा की कि चेतनाका एक खण्ड, विज्ञान, जानने का काम करता है। दूसरा खण्ड, संज्ञा, पहचाननेका काम करता है। तीसरा खण्ड, वेदना, संवेदनशील होनेका काम करता है और चौथा खण्ड, संस्कार, प्रतिक्रिया करनेका काम करता है। अनुभूतियोंके स्तर पर इस सारी प्रक्रियाको समझना है। जब तक जीवित हैं, सारे शरीर-स्कंध पर कहीं न कहीं, किसी न किसी कारणसे, कोई न कोई संवेदना होती ही रहती है। इंद्रियोंके दरवाजों पर बाहरकी कोई चीज टकराती है तो संवेदना होती है। भीतर मन और शरीरके टकरावसे संवेदना होती है। अन्तर्मनकी गहराइयोंमें इन संवेदनाओंकी वजहसे जो राग-द्वेषकी प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं, यदि हमने उसे जाना ही नहीं, यदि उसका दर्शन ही नहीं किया तो उसे दूर कैसे कर सकेंगे?

धम्म वाणी

जातिपि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, सोक परिदेव दुक्ख दोमनस्सुपायासा पि दुक्खा, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, संखित्तेन पञ्चुपादान खन्धा दुक्खा।

धम्म चक्क पवत्तन सुत्त

जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मरण भी दुःख है। शोक, परिदेव दुःख-दौर्मनस्य, उपायास भी दुःख है। अप्रियका संयोग दुःख है, प्रियका वियोग दुःख है, मनचाहे का न पाना भी दुःख है; संक्षेप में कहें तो उपादान याने आसक्ति पर आधारित पंच-स्कंधों की यह जीवनधारा ही दुःख है।

जीवन-जगतमें दुःख है, यह स्पष्ट है। इस सच्चाईको स्वीकार करना है। लेकिन मात्र स्वीकार करना काफी नहीं है। इस सच्चाईका दर्शन करना है। जब हम सच्चाईका दर्शन कर लेते हैं तो यह सच्चाई आर्य सच्चाई बन जाती है। जब तक दुःखको भोगते हैं, दुःखका संवर्धन ही करते हैं, दुःखको बढ़ाते ही हैं। जब दुःखका दर्शन करने लगते हैं तो दुःख दूर होने लगता है। दुःख सत्य, आर्य सत्य बन जाता है। आर्य सत्य इस मानेमें कि देखनेवालेको आर्य बना देगा, निर्मल बना देगा, संत बना देगा, मुक्त बना देगा, शुद्ध बना देगा, बुद्ध बना देगा।

इस साधनामें हमें इस सच्चाईका अनुभव करना है और उसे साक्षीभावसे देखना है। घंटे भर एक ही आसनमें बैठे रहनेसे बड़ा दुःख अनुभव होता है, बड़ी पीड़ा होती है। इस पीड़ाको देखना है। साक्षीभावसे देखते-देखते यह पीड़ा कम होती जायेगी और ऐसी स्थिति आयेगी कि बिल्कुल समाप्त हो जायेगी। परन्तु यदि इस पीड़ाको भोगते रहे, पीड़ामें कराहते रहे, तो पीड़ा न कम होगी, न मिटेगी। उसका संवर्धन ही होगा।

जबसे मनुष्य जन्म लेता है, अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए व्याकुल रहता है। आवश्यकताओंकी कोई सीमा नहीं है। बीमार होता है तो दुःखी होता है। बूढ़ा होता है तो दुःखी होता है। मरता है तो दुःखी होता है। देखता है कि जीवन दुःख ही दुःख है। सारे जीवन क्या चलता है? जो प्रिय है उसका वियोग हुए जा रहा है; प्रिय व्यक्ति, प्रिय वस्तु, प्रिय स्थिति। जो अप्रिय है उसका संयोग हुए जा रहा है। अनचाही होती रहती है, मनचाही नहीं होती। जो कामना करता है वह पूरी नहीं होती तो दुःखी होता है। यह जीवन जगतकी सच्चाई है। तीव्र इच्छा याने तृष्णा अपने आपमें व्याकुलता है। तृष्णा माने जो अपने पास है, उससे तृप्ति नहीं और जो नहीं है, उसे पानेके लिए व्याकुल हैं।

साधना करते-करते स्वयं अनुभव होगा कि तृष्णा कैसे जागती है। शरीरमें जो पीड़ा हो रही है वह अपने: आपमें इतनी दुःखदायी नहीं, लेकिन उसे दूर करनेकी तृष्णा कई गुना दुःखदायी होती है। सारे जीवन भर यही करते आए हैं। जो अप्रिय है उसे दूर धकेलना चाहते हैं, जो प्रिय है उसे अपनी ओर समेटना चाहते हैं। तृष्णाका दुःख इस धकेलने-समेटनेका ही दुःख है। यह सत्य है। लेकिन वह महापुरुष इस सच्चाई पर ही नहीं रुक गया। और गहराइयोंमें उतरा तो देखता है, "सङ्खित्तेन पञ्चुपादान खन्धा दुक्खा"। यह जो पांचों स्कंधोंके प्रति उपादान याने आसक्ति पैदा कर ली, यह दुःख है। ये पांच स्कंध क्या हैं? एक रूप-स्कंध याने परमाणुओंका स्कंध, भौतिक कलापोंका स्कंध-यह सारा शरीर जिसे "मैं" कहता है, "मेरा" कहता है। उसके प्रति गहरा चिपकाव है, आसक्ति है। इसी तरह चित्तके चार स्कंध - - विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार। इनके प्रति गहरा चिपकाव है। जैसे कलापोंका अपना स्वभाव है वैसे ही इन चित्त-स्कंधोंका अपना स्वभाव है और वे अपने स्वभावके अनुसार निरंतर काम करते रहते हैं। लेकिन इनके साथ इतना गहरा चिपकाव पैदा कर लिया है कि मैं जान रहा हूं, मैं पहचान रहा हूं, मैं संवेदनशील हो रहा हूं, मैं प्रतिक्रिया कर रहा हूं। व्यवहार जगतमें तो ऐसा कहना ही पड़े लेकिन हमें वास्तविकताको समझना है, सत्यको समझना है, देखना है। इसके साथ जितनी आसक्ति पैदा की है, उतना ही दुःख है। आसक्ति और दुःख दोनों पर्यायवाची हैं। जहाँ आसक्ति वहाँ दुःख। जितनी आसक्ति उतना दुःख। यह प्रकृतिका अटूट नियम है।

हम चार तरह की आसक्तियोंको अपने भीतर संजोए बैठे हैं। इन्हें दिन रात बढ़ाए जा रहे हैं। एक तृष्णाकी आसक्ति है। तृष्णा अपने आपमें व्याकुलता बढ़ाती है। परन्तु इसके साथ इतना चिपकाव पैदा कर लिया कि तृष्णा रहनी ही चाहिए। जिस किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थितिके प्रति तृष्णा जागी तो जब तक वह नहीं प्राप्त होती, बड़ी बेचैनी होती है, व्याकुलता होती है। परन्तु प्राप्त होने पर शीघ्र ही फीकी लगने लगती है। अब दूसरीके प्रति तृष्णा जाग उठती है। वह मिली तो तीसरी, चौथी.....। अन्त ही नहीं है इस तृष्णा का। बिना पेंदेकी बाल्टी है जो कभी भरती ही नहीं। जीवन भर यही चलता है। तृष्णा कायम रहनी ही चाहिए। क्योंकि उसके साथ गहरी आसक्ति है।

एक अन्य आसक्ति है "मैं" के प्रति, "मेरे" के प्रति। जानते ही नहीं कि "मैं" क्या है, "मेरा" क्या है। फिर भी इस "मैं" के खिलाफ, "मेरे" के खिलाफ कोई एक शब्द नहीं कहे। किसी ने कुछ कहा तो बड़ी व्याकुलता होती है, बड़ा दुःख होता है। जिसे "मेरा" कहा उसका विछोह होते ही दुःख होता है। आसक्ति जो है। आसक्ति दुःख ही लाती है।

एक अन्य आसक्ति होती है अपने दर्शनके प्रति, अपनी परम्परागत मान्यताके प्रति। इस आसक्तिको लेकर मनुष्य खूब बहस करता है, विवाद करता है, लड़ता है, झगड़ता है, व्याकुल रहता है।

एक और आसक्ति अपने-अपने कर्म-काण्डोंके प्रति होती है। यह आसक्ति भी कम व्याकुल नहीं करती।

इन चार आसक्तियों पर ध्यान देंगें तो देखेंगे कि जब-जब दुःख होता है इन चारोंमें से कोई न कोई आसक्ति ही उसका कारण होती है। परन्तु वह महापुरुष जो सम्यक् संबुद्ध बना, उसे तो कारण की जड़ों तक पहुँचना था। अनुसंधान चालू रहा। कार्य-कारण-शृंखलाकी एक-एक कड़ीका निरीक्षण करते हुए जड़ों तक जा पहुँचा।

जीवनमें दुःख तो है ही। "जाति पच्चया जरा मरणं सोक परिदेव दुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति"। जन्म हो गया तो बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु आयेगी ही। शोक, बेचैनी, परेशानी आयेगी ही। पर जन्म क्यों हुआ? बिना कारण तो इस जगतमें कुछ भी नहीं होता। जन्मके लिए माता-पिताका संयोग आवश्यक है जो प्रकृतिका एक नियम है लेकिन इसके अतिरिक्त यह समझें कि जीवन-धारा किस प्रकार चलती है? "भव पच्चया जाति"। यह "भव-भव" कुछ बनता ही जा रहा है। मृत्युके साथ बात समाप्त नहीं होती। मृत शरीरमें भी परिवर्तन होते जा रहा है और यह चेतनाकी धारा तुरंत किसी दूसरे शरीर से जुड़ जाती है। फिर क्षण-क्षण बनती है, बिगड़ती है। इस प्रकार यह क्रम चलता ही रहता है। तो यह भव क्यों होता है? अनुभूतियोंसे देखने पर एकदम समझमें आ गया— "उपादान पच्चया भवो"। यह आसक्ति ही भवका कारण है। जितनी गहरी आसक्ति होगी, उतना गहरा भव कर्म होगा। तो यह उपादान क्यों होता है? उसका क्या कारण है? अनुभूतियों द्वारा तुरंत मालूम हुआ— "तण्हा पच्चया उपादानं"। तृष्णा याने यह राग और द्वेष ही उपादान के कारण हैं। तृष्णा क्यों पैदा होती है? स्पष्ट हुआ कि "वेदना पच्चया तण्हा"। सारे शरीर-स्कंध पर जहाँ संवेदना होती है वहाँ तृष्णा जागती है। सुखद संवेदना हो तो राग और दुःखद संवेदना हो तो द्वेष। वेदना होनेका क्या कारण है? "फस्स पच्चया वेदना"। वेदना स्पर्श से होती है। इन छह इंद्रियोंके द्वारों पर इनके विषयोंसे स्पर्श होते ही संवेदना होती है। तो यह स्पर्श क्यों होता है? "सळायतन पच्चया फस्स"। यह छह इंद्रियोंके दरवाजे खुले रहते हैं, इन पर स्पर्श होता है। तो यह छह इंद्रियाँ कहाँ से आयीं? बात स्पष्ट हो गयी "नाम-रूप पच्चया सळायतनं"। नाम-रूपकी वजहसे ये छह इंद्रियाँ आयीं। यह नाम-रूप क्या है? नाम याने मन और रूप याने शरीर। इन दोनोंकी मिली-जुली जीवन-धारा जैसे ही शुरू हुई, छह इंद्रियोंको लेकर ही शुरू हुई। तो यह नाम-रूप क्यों हुआ? "विञ्ञाण पच्चया नाम-रूपं"। विज्ञानसे नाम-रूप हुआ। यह विज्ञान याने चेतना जो एक जीवन समाप्त होते ही

उसके साथ समाप्त हो जाती है पर अगले जीवनमें फिर किसी अन्य शरीरके साथ नयी उत्पन्न हो जाती है। समाप्त होते ही अगले क्षण नया विज्ञान उत्पन्न हो जाता है। उसका स्वभाव है क्षण-प्रतिक्षण उत्पन्न होकर आगे बढ़ना। यह विज्ञान क्यों होता है? 'सङ्खार पच्चया विञ्ञाणं"। हर संस्कार नया विज्ञान पैदा करता है। जैसे-जैसे साधनाकी गहराइयोंमें जायेंगे, मालूम होगा कि हर संस्कार नया विज्ञान याने अगले क्षणकी नई चेतना पैदा करता है। ये संस्कार कैसे बनते हैं? "अविज्जा पच्चया सङ्खारा"। अविद्यासे ही संस्कार बनते हैं। अविद्याका अर्थ है अज्ञान, बेहोशी, विमूढ़ता। इस प्रकार सारा रहस्य खुल गया। जड़ तक बात समझमें आ गयी।

अविज्जा पच्चया सङ्खारा, सङ्खार पच्चया विञ्ञाणं,
विञ्ञाण पच्चया नामरूपं, नामरूप पच्चया सळायतनं,
सळायतन पच्चया फस्सो, फस्स पच्चया वेदना,
वेदना पच्चया तण्हा, तण्हा पच्चया उपादानं,
उपादान पच्चया भवो, भव पच्चया जाति,
जाति पच्चया जरामरणं, सोक-परिदेव दुक्ख
दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति।

एवमे तस्स केवलस्स, दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति॥

देख लिया कि किस प्रकार यह दुःखका पहाड़ खड़ा होता है। सारा खेल समझमें आ गया। यह अविद्या, यह बेहोशी ही दुःखका मूल कारण है। इस अविद्याको जड़से काटें —

अविज्जाय त्वेव असेस विराग निरोधा, सङ्खार निरोधो,
सङ्खार निरोधा, विञ्ञाण निरोधो,
विञ्ञाण निरोधा, नाम-रूप निरोधो,
नाम-रूप निरोधा, सळायतन निरोधो,
सळायतन निरोधा, फस्स निरोधो,
फस्स निरोधा, वेदना निरोधो,
वेदना निरोधा, तण्हा निरोधो,
तण्हा निरोधा, उपादान निरोधो,
उपादान निरोधा, भव निरोधो,
भव निरोधा, जाति निरोधो,
जाति निरोधा, जरामरणं सोक-परिदेव
दुक्ख दोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति।
एव मे तस्स केवलस्स, दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति 'ति॥

कारणका निवारण समझमें आ गया। कितना भी बड़ा दुःखोंका पहाड़ क्यों न खड़ा कर लिया हो, सारा का सारा समाप्त हो जायेगा। अविद्याको जड़से उखाड़ना सीखें। कैसे उखाड़े?

दुःखको देख लिया। दुःखके कारणको देख लिया। अविद्याकी शृंखला देख ली। जीवित हैं तो नाम-रूपकी धारा चलेगी ही। इंद्रियाँ भी अपना काम करेंगी ही। स्पर्श भी होगा ही। संवेदना भी होगी ही। और जब-जब संवेदना होगी, पुराने स्वभावके कारण तृष्णा जागेगी। सुखद होगी तो राग की, दुःखद होगी तो द्वेष की। बस यहाँ रोक लगानी होगी। वेदना तो हो लेकिन "वेदना पच्चया तण्हा" के स्थान पर "वेदना पच्चया पञ्ञा" हो, प्रज्ञा जागे। हर वेदनाके साथ प्रज्ञा जागेगी तो अविद्याके कारण जो दुःख-चक्र चल रहा था वह पलट जायेगा धर्म-चक्र में। क्या है धर्म-चक्र? जब-जब वेदना जागे, हर वेदना प्रज्ञा जगाए — अनित्य है, नश्वर है। देख तो सही इसे! राग मत पैदा कर! द्वेष मत पैदा कर! जितनी देर हर संवेदनाके साथ प्रज्ञा जागती है, नए संस्कार नहीं बनते। इतना ही नहीं पुराने संस्कार भी कटने लगेंगे।

"खीणं पुराणं नवं नत्थि संभवं"। नया नहीं बनने पायेगा और पुराना क्षीण हो जायेगा। उस महापुरुषने प्रकृतिके इस कानूनको, विधानको देख लिया। नया बनाना बंद किया तो पुराना क्षीण पड़ने लगा। क्षीण होते-होते एक ऐसी अवस्था पर पहुँच गया कि सारे पुराने भव संस्कार क्षीण हो गए। प्रज्ञाको जगाते-जगाते चित्त नितांत निर्मल हो गया। नितांत विमुक्त हो गया। शुद्ध बुद्ध हो गया। उस समय जो हर्षके उद्गार निकले वे बड़े महत्वके हैं :-

अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गह कारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं।
गह कारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गह कूटं विसङ्खतं।
विसङ् खार गतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा॥

कितनी बार जन्म लिया इस संसारमें! गिनती ही नहीं। जन्म लेता गया और बिना रुके (मृत्युकी ओर) दौड़ लगाता गया। इस कायारूपी घर बनानेवालेकी खोज करते हुए पुनः पुनः दुःखमय जीवन में पड़ता रहा। अब घर बनानेवालेको देख लिया। अब नया घर नहीं बना सकेगा। सारी कड़ियाँ भग्न हो गयीं। घरका शिखर टूट गया। घर बनानेकी सारी सामग्री तोड़-फोड़कर फेंक दी गयी। चित्त पूर्व संस्कारोंसे विहीन हो गया। भविष्यके लिए कोई तृष्णा नहीं रह गई। तृष्णाका समूल नाश हो गया। विमुक्त हो गया।

हर व्यक्ति ऐसा कर सकता है। हर व्यक्ति इस अवस्था तक पहुँच सकता है। पर काम करना होगा। काम स्वयं ही करना होगा।

(पू गुरुदेवके प्रवचनका श्री रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

पूनामें लघु-शिविर एवं सामूहिक साधना

निम्न पते पर प्रत्येक रविवारकी अपरान्ह ४ से ६ बजे तक सामूहिक साधना होती है और आगामी ७, ८ एवं ९ मई को एक दिवसीय लघु-शिविरोंका आयोजन है। विवरण के लिए कृपया संपर्क करें :-

स्थान : श्री लक्ष्मी नारायण राठी,
"सुलक्ष्मी", २८, मुकुन्द नगर, (लक्ष्मीनारायण टाकीजकी-ओर)
पूना-४११००९ (म.) फोन-२७०८१

विशिष्ट शिविरोंका आयोजन

गर्मी की छुट्टियोंमें शिविरार्थियोंकी विपूल मांग को ध्यानमें रखते हुए सहायक आचार्यों द्वारा संचालित कुछ विशिष्ट शिविरोंके आयोजन निश्चित किए गए हैं। इनमें नये-पुराने सभी सम्मिलित होकर धर्म-लाभ प्राप्त कर सकते हैं :-

वि. शि. क्र. १ *इगतपुरी दि. १७-५-८२ से २८-५-८२ तक संचालक – सहायक आचार्य श्री लक्ष्मीनारायण राठी

" " २ *इगतपुरी दि. २८-५-८२ से ८-६-८२ तक संचालक – स. आ. श्री नटवरलाल एच. पारिख

*संपर्क – व्यवस्थापक–विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. फोन : ७६.

" " ३ □जयपुर केन्द्र दि. २८-५-८२ से ८-६-८२ तक संचालक – स. आ. श्री रामसिंहजी

□संपर्क – श्री श्यामसुन्दर मून्दडा, जी–१/ए, अशोक मार्ग, जयपुर–३०२ ००१. फोन : ६३३२२/६५४१४ तार–डॉली

" " ४ ●कलकत्ता १५-६-८२ से २६-६-८२ तक संचालक – स. आ. श्री लक्ष्मीनारायण राठी.

●संपर्क – श्री सुदर्शन ढंढारिया, ४८–डी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता–७०० ००७. फोन : ३४४७९२.

पू. गुरूजी के भावी-शिविर

शि. क्र. २१३ एवं २१४ अमेरिका में तथा २१५ फ्रांस में क्रमशः २८ मई से ९ जुलाई तक होंगे।

शि. क्र. २१६ *हैदराबाद (विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र, 'धम्मखेत्त') दि. १४-७-८२ से २५-७-८२ तक (हिन्दी)

*संपर्क : १) श्रीमती ऊषाबेन पी. मेहता, ६१, श्रीनगर कॉलोनी, हैदराबाद–५०० ८७३. फोन : ३०२९१. अथवा

२) श्री पूरनमल अग्रवाल, द्वारा–होटल राजधानी, सिद्दिअम्बर बाजार, हैदराबाद–५०० ०१२. फोन : ५७५७१.

शि. क्र. २१७ □जयपुर (विपश्यना केन्द्र, धम्मथली, गल्ताजी रोड) दि. ४-८-८२ से १५-८-८२ तक (हिन्दी)

एक शुभेच्छु की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

ओ री त्रिस्ना खोड़ळी ! किसी क लागी लार ।
सांस सांस महँ रम रयी, सुख को छुटग्यो सार ॥
या त्रिस्ना की तीस है, कदे न बुझणै पाय ।
पीतां पीतां बिसय रस, कंठ सूखता जाय ॥
त्रिस्ना की आंधी गुफा, ज्यों बड़ग्यो ई द्वार ।
चलतो चलतो मर मिट्यो, मिल्यो न परलो पार ॥
त्रिस्ना बढती ही रही, सुरसा सो मुं बाय ।
या बिन पैंदै की कुई, कदे भरी ना जाय ॥
दुखड़ा मेटै, बावळा ! कुण धरती को नाथ ?
जद तक त्रिस्ना साथ है, दुखड़ा रै सी साथ ॥
जद तक त्रिस्ना सिर चढी, दुखड़ा दूर न होय ।
कीं देवां रै स्यामनै, आंख्यां भर भर रोय ॥

दोहे धर्म के

सोए जननी जठर में, जानें कितनी बार ।
जरा व्याधिका, मरण का, लिए दुखों का भार ॥
अनचाही होती रहे, यही जगत की रीत ।
चित विचलित करती रहे, मनचाही की प्रीत ॥
इस जग में किसका हुआ सुख से अविचल मेल ?
जरा जीर्ण हो, नष्ट हो, यही नियति का खेल ॥
रोग समझ पाया नहीं, समझा नहीं निदान ।
रोग भला कैसे मिटे ? कैसे हो कल्याण ?
दुःख समझ पाया नहीं, समझा नहीं निदान ।
दुःख भला कैसे मिटे ? कहाँ मोक्ष ? निर्वाण ?
तृष्णा जड़ से खोद कर, अनासक्त बन जांय ।
भव बंधन से छुटन का, और न अन्य उपाय ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/- ● वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

"विपश्यना"

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To